IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 3, Issue 1, March 2020
Impact Factor: 4.819

गीता के नैतिक दर्शन के परिप्रेक्ष्य मे पाश्चात्य उपयोगितावाद का समीक्षात्मक अनुशीलन ।

डॉ. इन्दु प्रकाश सिंह

सहायक प्रोफेसर , दर्शन शास्त्र ,

हेमवती नन्दन बहुगुणा राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नैनी ,प्रयागराज ।

dripsingh1975@gmail.com

सारांश-

शाब्दिक उत्पत्ति की दृष्टि से उपयोगितावाद अंग्रेजी शब्द यूटिलीटेरियनिज्म [**Utilitarianism**] के लिए हिन्दी में प्रयुक्त होता है। जान स्टुअर्ट मिल ने इस अंग्रेजी शब्द को गढ़ा था; उसकी इस विषय पर जो पुस्तक है उसका नाम भी 'यूटिलीटेरियनिज्म' है।1 किन्तु यूटिलिटी (उपयोगिता) शब्द मिल से भी प्राचीन है। मिल ने ''अधिक से अधिक लोगों को अधिक से अधिक सुख'' इस सिद्धान्त को यूटिलिटी कहा हैं इसके पूर्व ह्यूम और बेंथम ने इस सिद्धान्त को अभिव्यक्त किया था, परन्तु मिल ने इसे एक शास्त्रीय नैतिक मत का रूप दिया। इस प्रकार किसी कार्य, नीति, निर्णय या विकल्प से कुल मिलाकर प्राप्त होने वाले सुख की मात्रा को 'उपयोगिता' कहा जाता है; तथा मानवीय गतिविधियों को उपयोगिता के आधार पर जांचने के सिद्धान्त को उपयोगितावाद कहते हैं। इसमें परिणाम पर ध्यान दिया जाता है उसके प्रयोजन या प्रक्रिया पर नहीं।

मुख्य शब्द - लोक-उपयोगिता, औद्योगिक क्रांति,पुस्पिन ,ब्यक्तिगत उपयोगिता ,लोक उपयोगिता ,लोक संग्रह ,सर्व भूत हित ,साम्य स्थिति ।

Copyright to IJARSCT
www.ijarsct.co.in
DOI: 10.48175/IJARSCT-440E

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 3, Issue 1, March 2020 Impact Factor: 4.819

साहित्यावलोकन- भगवद्गीता,उपनिषद -गीता प्रेष ,बाइबिल ,गीता रहस्य -तिलक। नीति शास्त्रके मूल सिद्धान्त -डॉ.वी पी वर्मा।

उद्देश्य - कुछ दार्शनिक प्रश्नो का समाधान तलासना है कि -उपयोगितावाद का सिद्धान्त गीता के नैतिक दर्शन से साम्य रखता है या नहीं? क्या उपयोगितावाद में लोकसंग्रह के आदर्श का समावेश है? लोकसंग्रह के आदर्श से उपयोगितावाद का सिद्धान्त कितना उन्नत एवं व्यावहारिक है? इन तार्किक प्रश्नो का सम्यक विश्लेषण करना है ।

प्रस्तावना -

पाश्चात्य जगत विशेष रूप से यूरोप में 18वीं शताब्दी के दौरान एक युगान्तरकारी परिवर्तन आया जिसने वह। के सम्पूर्ण आर्थिक जीवन को नये रूप में ढाल दिया। इस महान परिवर्तन का नाम था-'औद्योगिक क्रान्ति' । यह क्रान्ति ब्रिटेन में 1760 ई0-1840 ई0 के दौरान सम्पन्न हुयी और कालान्तर में इसका प्रभाव सम्पूर्ण यूरोप तथा अमेरिका तक फैल गया। वस्तुतः इसका आरम्भ आर्थिक जीवन के महत्वपूर्ण परिवर्तनों से हुयी, परन्तु आगे चलकर इसने मानव जीवन के सभी पक्षों-राजनीति, धर्म, कला, संस्कृति, साहित्य, नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों पर गहरा प्रभाव डाला। इसने व्यक्ति को समाज का केन्द्र बिन्दु स्वीकार करके यह तर्क प्रस्तुत किया कि व्यक्ति स्वयं विवेकसम्पन्न होता है और उसे अपने हित के सर्वोत्तम मार्ग की पहचान होती है। ऐसी हालत मेंजरमी बेंथम ने व्यक्ति के अधिकारों, सार्वजनिक नीति एवं विधि निर्माण के लिए एक नये अनुभवमूलक आधार का संकेत दिया जो उपयोगितावाद के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

पाश्चात्य दार्शनिक बेंथम ने उपयोगिता को समझाते हुए कहा कि,-''उपयोगिता का अर्थ किसी विषय का वह गुण है जिसके द्वारा वह विषय किसी पार्टी (पक्ष) का लाभ, कल्याण, शुभ, सुख या आनंद पैदा करता है अथवा उसके संकट, दुःख, अशुभ, असुख के होने को दूर करता है; यदि वह पार्टी कोई

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 3, Issue 1, March 2020 Impact Factor: 4.819

सामान्य वर्ग है तो उस वर्ग का सुख और यदि वह कोई व्यक्ति है तो उस व्यक्ति का सुख यहां विचारा जाता है।'' 2 किन्तु वह पुनः कहता है कि, ''वर्ग एक काल्पनिक संस्था है जिसके अनेक व्यक्ति सदस्य समझे जाते हैं; इस कारण वर्ग का सुख उन व्यक्तियों में से अधिकांश का सुख है जो उस वर्ग के सदस्य हैं। 3

पाश्चात्य दार्शनिक बेंथम ने प्राचीन यूनानी विचारक एपीक्यूरस के इस विचार को नए संदर्भ में दोहराया कि मनुष्य को ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे वह अपने सुख को बढ़ा सके एवं दुःख से बच सके। उसने कहा कि राजनीतिक संस्थाओं तथा सार्वजनिक नीतियों को मानवीय अधिकारों एवं दायित्वों की किसी काल्पनिक और मनमानी संकल्पनाओं के संदर्भ में उत्कृष्ट या निकृष्ट नहीं मानना चाहिए, बल्कि उन्हें उनके परिणामों के आधार पर जाँचना चाहिए। 4 बेंथम का विचार था कि व्यक्ति की संतुष्टि ही उपयोगिता का मापदण्ड है। अतः जब संपूर्ण समाज के लिए किसी नीति का निर्माण करना हो या किसी निर्णय पर पहुंचना हो तो उसका सर्वोपरि सिद्धान्त- ''अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख'' होना चाहिए। पुनश्च, बेंथम मानते थे कि सुख एवं दुःख आत्मपरक अनुभूतियां या काल्पनिक मानदंड मात्र नहीं हैं; अपितु वस्तुपरक मानदण्ड हैं। उन्होंने भिन्न्ा-भिन्न्ा प्रकार के सुखों में गुणात्मक अन्तर का खण्डन करते हुए उनके परिमाणात्मक अन्तर पर बल दिया। बेंथम की प्रसिद्ध पंक्ति है कि, यदि कंचे (पुस्पिन) खेलने और कविता पढ़ने में एक समान आनंद प्राप्त होता है, तो इन दोनों में कोई अंतर नहीं है। ;[Quality of Pleasure being equal Puspin is as good as Poetry] भारतीय संदर्भ में इसका दृष्टान्त इस रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है कि-गुल्ली डंडा खेलने का सुख एवं औपनिषदिक तत्वज्ञान को आत्मसात करने का सुख समान है यदि दोनों से समान सुख प्राप्त होता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य यदि वास्तव में सुखी है तो उसके सुख का स्रोत क्या है-इससे कोई फर्क नहीं है।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 3, Issue 1, March 2020
Impact Factor: 4.819

पाश्चात्य दार्शनिक जान स्टुअर्ट मिल ने अपनी पुस्तक 'यूटिलीटेरियनिज्म, (1863) में बेंथम के उपयागितावाद के मूल सिद्धान्त में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया। उन्होंने बेंथम के इस सिद्धान्त को तो स्वीकार किया कि 'राज्य' का ध्येय-''अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख है'' किन्तु बेंथम के इस मत का खण्डन किया कि ''सुखों में कोई गुणात्मक अंतर नहीं होता हैं'' मिल ने प्रतिपादित किया कि भिन्न-भिन्न प्रकार के सुखों में गुणात्मक अंतर अवश्य होता है, मिल के अनुसार जो सुख मनुष्य की उच्चतर क्षमताओं द्वारा प्राप्त किया जाता है, वह अन्य सुखों से उत्तम हैं उन्होंने अपनी बात को इस प्रसिद्ध उक्ति में व्यक्त किया है कि,-''एक संतुष्ट शूकर होने की अपेक्षा, असंतुष्ट मनुष्य होना अधिक अच्छा है; संतुष्ट मूर्ख होने की अपेक्षा असंतुष्ट सुकरात होना कहीं अधिक अच्छा है।'' 5 इस प्रकार सुख के गुणात्मक पक्ष को स्वीकार करके मिल ने उपयोगितावाद को अधिक सुसंगत बनाने का प्रयास किया।

ध्यातव्य है कि कभी-कभी व्यक्तिगत सर्वाधिक सुख को व्यक्तिगत उपयोगिता ;[Private Utility] और अधिक से अधिक दूसरों के सर्वाधिक सुख को लोक उपयोगिता [Public Ulity]कहा जाता है।

उपयोगितावाद व्यक्तिगत उपयोगिता का सिद्धान्त नहीं है, यह अपने विशुद्ध रूप में लोक-उपयोगिता का सिद्धान्त है।6 उपयोगितावादियों ने व्यक्तिगत उपयोगिता तथा लोक उपयोगिता के विविध समन्वय किये हैं; किसी ने व्यक्तिगत उपयोगिता को लोक-उपयोगिता से अधिक महत्व दिया है तो किसी ने लोक उपयोगिता को व्यक्तिगत उपयोगिता से। किन्तु व्यकितगत उपयोगिता को सभी ने लोक-उपयोगिता से अनुपूरित करने की चेष्टा की है। बेंथम ने लोक उपयोगिता से अधिक महत्व व्यक्तिगत उपयोगिता को दिया, जॉन स्टुअर्ट मिल ने लोक-उपयोगिता को व्यक्तिगत उपयोगिता से अधिक महत्व दिया है, और सिजविक ने तो सार्वभौम सुख या लोक उपयोगिता के दृष्टिकोंण से ही व्यक्तिगत उपयोगिता को आकलित या मूल्यांकित किया है। अतः व्यक्तिगत

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 3, Issue 1, March 2020 Impact Factor: 4.819

उपयोगिता तभी उपयोगिता है जब तक कि वह लोक उपयोगिता का अंग हो अन्यथा उसे उपयोगिता समझना भ्रम है।7

इस प्रकार उपयेागितावाद 'अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख या हित को समस्त मानवीय कर्मों के शुभत्व का मानदंड मानता है। यद्यपि सुख के स्वरूप के सम्बन्ध में एक दूसरे से पूर्णतः सहमत न होते हुए भी सभी 'अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख' को ही उपयोगितावाद का आधार मानते हैं। पुनश्च, ध्यातव्य है कि 'सुख' उपयोगितावाद का अनिवार्य मूल आधार नहीं है; क्योंकि कोई व्यक्ति सुखवादी न होते हुए भी उपयोगितावादी हो सकता है।8 अनेक विचारक सुखवाद को स्वीकार न करते हुए भी उपयोगितावादी हैं।

उल्लेखनीय है कि उपयोगितावाद का सिद्धान्त शास्त्र दृष्टि से या लोकसंग्रह की दृष्टि से अपूर्ण तथा एकांगी है। वस्तुतः प्रत्येक मनुष्य की सद्सद्विवेक बुद्धि भी सात्विक, राजस तथा तामस् हुआ करती है। ऐसी अवस्था में उसका कार्य अकार्य निर्णय सदैव दोषरहित नहीं हो सकता; और यदि मात्र ''अधिकांश लोगों का अधिकांश सुख' किसमें है, इस बाह्य आधिभौतिक कसौटी पर ही ध्यान देकर नीतिमत्ता का निर्णय करें; कर्म करने वाले पुरूष की बुद्धि का कुछ भी विचार नहीं हो सकेगा। तब यदि कोई मनुष्य 'चोरी' या व्यभिचार और उसके वाह्य अनिष्टकारक परिणामों को कम करने के लिए या छिपाने के लिए पहले से ही सावधान होकर; कुछ कुटिल प्रबन्ध कर ले तो यही कहना पड़ेगा कि उसका दुष्कृत्य आधिभौतिक नीति-दृष्टि से उतना निंदनीय नहीं है। उल्लेहखनीय है कि नैतिक दृष्टि से वैदिक धर्म में ही कायिक, वाचिक एवं मानसिक शुद्धता का आग्रह नहीं है; अपितु पश्चिम में भी विशेषतः बाइबिल में भी व्यभिचार को केवल कायिक पाप न मानकर, पर स्त्री की ओर दूसरे पुरूषों का देखना या पुरूष की ओर दूसरी स्त्री को देखना भी व्यभिचार माना गया है।9 पुनश्च, बाह्य सुखों को ही परम साध्य मानने से मनुष्य, मनुष्य में और राष्ट्र, राष्ट्र में उसे पाने के लिए प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो जाती है, और इससे पारस्परिक शत्रुता एवं युद्ध संभव है। क्योंकि वाह्य सुख के

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 3, Issue 1, March 2020 Impact Factor: 4.819

लिए जो बाह्य साधन आवश्यक हैं, वे प्रायः दूसरे के सुख को कम किये बिना हमें नहीं मिल सकते हैं।

लोकसंग्रहपरक साम्य बुद्धि के साथ समस्या नहीं है। यह आन्तरिक सुख आत्मवश है, अर्थात यह किसी दूसरे मनुष्य के सुख में बाधा न डालकर प्रत्येक को मिल सकता है। वस्तुतः आत्मैक्य को पहचान कर सब प्राणियों से समता का व्यवहार करना ही जिसका स्वभाव बन जाता है, ऐसी अवस्था में वह व्यक्ति गुप्त या प्रकट किसी रीति से भी कोई दुष्कृत्य कर ही नहीं सकता; और पुनः उसे बतलाने की आवश्यकता भी नहीं रहती कि-हमेशा यह देखते रहो कि 'अधिकांश लोगों का अधिक सुख' किसमें है।

ऐसा नहीं है कि मात्र नैतिक कर्मों का निर्णय करने के लिए ही सार-असार विचार की आवश्यकता होती है। सार-असार विचार करते समय यही महत्वपूर्ण प्रश्न होता है कि-अन्तःकरण कैसा होना चाहिए? क्योंकि सभी मनुष्यों के अन्तःकरण एक समान नहीं होते हैं। अतएव जब यह पूर्व पक्ष के रूप में अपेक्षित है कि 'अन्तःकरण में सदैव साम्य बुद्धि जागृत रहनी चाहिए'- तो फिर इस बात की आवश्यकता कहां है कि 'अधिकांश लोगों का हित या सब प्राणियों के हित का सार-असार विचार करो।

पाश्चात्य जगत के दार्शनिक भी अब यह कहने लगे हैं कि मानव जाति के प्राणियों के सम्बन्ध में मनुष्यों के जो कुछ भी कर्तव्य हैं, वे तो हैं ही; परन्तु मूक जानवरों के सम्बन्ध में भी मनुष्य के कुछ कर्तव्य हैं, जिनका समावेश कार्य-अकार्य शास्त्र में किया जाना चाहिए; और यदि इस व्यापक दृष्टि से देखें तो मालूम होगा कि 'अधिकांश लोगों का अधिकतम सुख' की अपेक्षा 'सर्वभूत हित' शब्द ही अधिक व्यापक और उपयुक्त है तथा 'साम्य बुद्धि' में इन सभी का समावेश हो जाता है।10 पुनश्च, इसके विपरीत यदि ऐसा मान लें कि किसी की बुद्धि शुद्ध और सम नहीं है; तो वह इस बात का ठीक-ठीक हिसाब भले ही कर ले कि 'अधिकांश लोगों का अधिकतम सुख' किसमें है;

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 3, Issue 1, March 2020 Impact Factor: 4.819

परन्तु नीति धर्म की ओर उसकी प्रवृत्ति होना संभव नहीं है; क्योंकि किसी सत्कार्य की ओर प्रवृत्त होना शुद्ध मन का गुण है या धर्म है, हिसाबी मन का नहीं।11 यदि कोई कहे कि ''हिसाब करने वाले मनुष्य के स्वभाव या मन को देखने की तुम्हे कोई आवश्यकता नहीं है, तुम्हे केवल यही देखना चाहिए कि उसका किया हुआ हिसाब सही है या नहीं, और उस हिसाब से कर्तव्य या अकर्तव्य का निर्णय करके तुम्हारा काम चल जाता है या नहीं-तो वह भी सच नहीं हो सकता। कारण यह है कि सामान्यतः यह तो सभी जानते हैं कि सुख, दुःख किसे कहते हैं, तो भी सब प्रकार के सुख दुःखों के तारतम्य का हिसाब करते समय पहले यह निश्चय कर लेना पड़ता है कि किस प्रकार के सुख, दुःखें को कितना महत्व देना चाहिए। परन्तु सुख दुःख की इस प्रकार माप करने के लिए उष्णतामापक यंत्र के समान कोई निश्चित वाह्य साधन न तो वर्तमान समय में है और न ही भविष्य में भी उसके मिल सकने की कुछ संभावना है।12 इसलिए सुख-दुःख की ठीक-ठीक योग्यता का निर्णय करने का काम प्रत्येक मनुष्य को अपनेमन से ही करना पड़ेगा। परन्तु जिसके मन में ऐसी आत्मौपम्य बुद्धि या लोकसंग्रह कारक दृष्टि पूर्ण रीति से जागृत नहीं हुयी है कि जैसा मैं हूं वैसा दूसरा भी है' उसे दूसरे की सुख दुःख की तीव्रता का स्पष्ट ज्ञान कभी नहीं हो सकता है, इसलिए वह इन सुख दुःखों की सच्ची योग्यता कभी जान ही नहीं सकेगा।

अत; कहना पड़ता है कि, ''अधिकांश लोगों के अधिकतम सुख को देखना है इस वाक्यांश की 'देखना' इस हिसाबी बाह्य क्रिया को अधिक महत्व देता है । किन्तु जिसे लोकसंग्रह परक निष्काम बुद्धि प्राप्त है वह दूसरों के सुख दुःख को महत्व देता है।

सब प्राणियों के विषय में साम्यावस्था, शुद्ध-बुद्धि ही नीतिमत्ता निष्कामी, स्थितप्रज्ञ, या आत्मौपम्य लोकसंग्रह परक सत्वशील अन्तःकरण का धर्म है, वह मात्र सत्य-असत्य विचार का फल नहीं है। महाभारत युद्ध के बाद युधिष्ठर के राज्यासीन होने पर जब कुंती अपने पुत्रों के पराक्रम से कृतार्थ हो चुकी और धृतराष्ट्र के साथ वानप्रस्थ आश्रम का आचरण करने के लिए बन जाने लगी।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 3, Issue 1, March 2020 Impact Factor: 4.819

तब उसने युधिष्ठर से ''तू अधिकांश लोगों का कल्याण किया कर'' इत्यादि व्यर्थ बातें न कहकर युधिष्ठर से सिर्फ यही कहा कि:-

मनस्ते मदहस्तु च। 13

अर्थात्, 'तू अपने मन को हमेशा विशाल बनाये रखना।' इस प्रकार जिन दार्शनिकों ने उपयोगितावाद के आधार पर यह प्रतिपादित किया कि केवल 'अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख' किसमें है यह देखना ही नीतिमत्ता की सच्ची कसौटी है, वे कदाचित् पहले से ही यह स्वीकार कर लेते हैं कि उनके समान ही अन्य सब लोग शुद्ध मन के हैं और ऐसा समझकर वे अन्य सब लोगों को यह बतलाते हैं कि नीति का निर्णय किस रीति से किया जाय। परन्तु ये दार्शनिक जिस बात को पहले से ही मान लेते हैं, वह सच नहीं हो सकती, इसलिए नीति निर्णय का उनका नियम अपूर्ण और एक पक्षीय सिद्ध होता है। उनका यह प्रतिपादित करना कि मन, स्वभाव, शील आदि को यथार्थ बनाने का प्रयत्न करने के बदले, यदि कोई नीतिवान बनने के लिए अपने कर्मों के बाह्य परिणामों का हिसाब करना सीख लें, तो बस हो गया, और फिर जिनकी स्वार्थ बुद्धि नहीं टूटी हो, वे लोग धूर्त, मिथ्याचारी या ढोंगी बनकर सारे समाज की हानि का कारण हो जाते हैं। इसलिए केवल नीतिमत्ता की कसौटी की दृष्टि से देखें तो भी कर्मों के केवल बाह्य परिणामों पर विचार करने वाला मार्ग एकांगी तथा अपूर्ण है।

निष्कर्ष - इस प्रकार गीता का नैतिक दर्शन पश्चिमी आधिभौतिक उपयोगितावाद की अपेक्षा अधिक व्यापक, युक्तिसंगत और निर्दोष है कि बाह्य कर्मों से व्यक्त होने वाली और संकट के समय मे भी दृढ़ रहने वाली 'साम्य बुद्धि' का ही अवलम्बन सत्यासत्य के विवेक की कसौटी के रूप में अपनाना चाहिए। उपयोगितावाद का 'अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख' स्वार्थवाद से आगे निकलकर परार्थवाद की ओर बढ़ता अवश्य है, और इस कारण से वह लोकसंग्रह के वैश्विक एकता या वैश्विक स्तर पर श्रेय संपादन के प्रयास के आदर्श के प्रथम सोपान के रूप में अवश्य

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 3, Issue 1, March 2020 Impact Factor: 4.819

महत्व रखता है; किन्तु गीता के लोकसंग्रह कारक 'सर्वभूत हित' के आदर्श से उपयोगितावाद का आदर्श क्षीण प्रतीत होता है। अतः गीता का नैतिक दर्शन ही सदाचरण की सच्ची कसौटी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. प्रो0 संगमलाल पाण्डेय-'नीतिशास्त्र का सर्वेक्षण' सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, पृष्ठ 150
2. बेंथम-एन इन्ट्रोडक्शन टू दि प्रिंसिपुल आॅफ माॅरल्स एण्ड लेजिशलेशन-पृष्ठ 2
3. उरोक्त उद्धृत ग्रंथ पृष्ठ 2
4. डाॅ0 ओ0 पी0 गावा-'राजनीतिक चिंतन की रूप रेखा'
   मयूर पेपर बैक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 158
5. जे0 एस0 मिल-यूटिलीटेरियनिज्म, पृष्ठ 14
6. प्रो0 संगमलाल पाण्डेय उपरिउद्धृत ग्रंथ पृष्ठ 152
7. उपरोक्त
8. डाॅ0 वेदप्रकाश वर्मा- नीतिशास्त्र के मूल सिद्धान्त
   एलाईड पब्लिशर्स लिमिटेड, नई दिल्ली 1992, पुष्ठ 98
9. बाइबिल, न्यूटेस्टामेन्ट-(मत्ती0-5.28)
   प्रकाशक-बाइबिल सोसाइटी आॅफ इंडिया, बंगलौर
10. बाल गंगाधर तिलक-गीतारहस्य, केसरी मुद्रणालय, अनु0-माधवराव जी सप्रे, पूना, पृष्ठ 316
11. उपरोक्त
12. उपरोक्त
13. महाभारत (अश्व0 17.21)